शोध मंथन Vol. XIV No.I Jan.-Mar.2023 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

भारतीय चित्रकला के धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप की विवेचना

डॉ० हरीओम शंकर
एसोसिएट प्रोफेसर, चित्रकला विभाग
डी०ए०वी० (पी०जी०) कॉलेज,
देहरादून (उत्तराखण्ड)
ईमेलः *drhariomshanker@gmail.com*

प्राप्तिः 04.03.2023
स्वीकृतः 15.03.2023

9

सारांश

भारतीय चित्रकला की परम्परा धर्म प्रधान रही है। धाराणा यही है कि भारतीय चित्रकला का जन्म धार्मिक सेवा के उद्देश्य से ही हुआ है। धार्मिक भावना ने चित्रकला को विषय–वस्तु प्रदान की है। धार्मिक भावना ने ही चित्रण में नैतिकता के महत्व को स्थापित किया है। चित्रकला में धार्मिक भावना को महत्व देते हुए प्रो0 आर0के0 मुखर्जी ने माना है कि चित्रकला और धर्म में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यह सिद्ध करना कठिन है कि इन दोनों में पहले किसने जन्म लिया। भारतीय चित्रकला के प्राचीन ग्रन्थों में चित्रकला के कार्य को धार्मिक आस्था के उद्देश्य से निश्चित किया गया है और चित्रकार को धार्मिक विचारों से ग्रस्त माना है। चित्रसूत्र में तो चित्रकार को धार्मिक आचरण अपनाने के निर्देश भी दिये गये हैं। इस प्रकार यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि भारतीय चित्रकला की परम्परा का धर्म एक महत्वपूर्ण तत्व है।

मुख्य बिन्दु

भारतीय चित्रकला, धर्म, दार्शानिक, आध्यात्मिक, अभिव्यक्ति, सौन्दर्य, चित्रकार।

चित्रकला, दर्शन और आध्यात्म का विकास निरन्तर गतिशील परिस्थितियों में होता है। ये परिस्थितियाँ ही कला के विकास का इतिहास लिखती हैं। कभी–कभी किसी कला परम्परा में सहसा परिवर्तन आते हैं किन्तु यदि इनके कारणों का विचार किया जाये तो समस्त कला के सम्बन्ध में एक जैसे सिद्धान्त ही सामने आते हैं। अतएव यह ध्यान रखना चाहिये कि कला और संस्कृति का विकास किसी एक वस्तु से सम्बन्धित नहीं है। उसमें उन समस्त कारणों का विचार करना चाहिये तब ही स्थिति स्पष्ट हो सकती है।

मनुष्य चाहे भयंकर जंगली परिस्थितियों में रहता हो, चाहे नगरों के सुरक्षित वातावरण में, चाहे सभ्यता के आदिचरण में हो, चाहे विकसित सभ्यता के परिवेश में वह अपना समस्त समय और शक्ति केवल जीवन–यापन की सुविधायें प्राप्त करने में ही नष्ट नहीं करता जहाँ जीविकोपार्जन के साधन सुलभ हैं वहाँ यह आलसी नहीं बन जाता और जहाँ कठिन जीवन संघर्ष करना पड़ता है वहाँ केवल उद्योग में ही नहीं लगा रहता। वे व्यक्ति जिन्होंने प्रकृति से जीविको पार्जन के प्रचुर साधन प्रदान किये अपने चारों ओर वातावरण को अधिकाधिक सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया। इसी प्रकार संसार की निर्धन से निर्धन और पिछड़ी जातियों के मनुष्य भी ऐसी कृतियों का सृजन करते हैं जो उन्हें रसानुभूति प्रदान करती हैं। सारांश यह है कि समस्त मानव जाति किसी न किसी प्रकार कलात्मक रसानुभूति का आनन्द

लेती हैं। विभिन्न मनुष्यों के सौन्दर्य सम्बन्धी आदर्श चाहें कितने ही भिन्न क्यों न हो पर स्वयं वे उन आदर्शों से अपार आनन्दित होते हैं। अपने–अपने देश की क्षेत्रीय अथवा भौगोलिक परिस्थितियों में उन्हें जो प्राकृतिक साधन उपलब्ध है उन्हीं से वे विभिन्न कला रूपों का विकास करते हैं।

कला क्षणिक आनन्द तक सीमित नहीं है। वह परमानन्द प्रदान करती है। इसी के अन्तर्गत धार्मिक, नैतिक तथा आदर्शवादी विचारधाराओं का समन्वय हुआ है और यही भारतीय कला का प्राण है। आज के मानव के लिये ये तत्व कसौटी पर हैं। आज की कला हमारे जीवन और आध्यात्मिक समृद्धि से कहाँ तक सम्बन्धित हैं उसमें लोक कल्याण की भावना किस सीमा तक प्रतिफलित हुई है यह विचारणीय है। क्या उसे हम साधना और चिंतन की यौगिक अवस्था कह सकते हैं। क्या इसमें वही आस्था है जो प्राचीन अंकनों में देवी–देवताओं की अभिव्यक्ति थी। क्या वे उसी प्रकार विश्वास को बल प्रदान कर सकती है? कला अतीत की उपलब्धियों का अनुकरण मात्र नहीं होती, कला की परम्परा में विकास के नये मौलिक तत्व यह जोड़ती है साथ ही कला अतीत की महान परम्परा को सहेजकर आगे बढ़ती है। अतीत की उपलब्धियों को त्यागकर कलाकार एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता। उसे सहस्त्रों वर्ष की तपस्या और साधन का फल अनायास ही मिल जाता है। उसे भाषा, छन्द आदिकला की लम्बी अखण्ड परम्परा के तत्व उत्तराधिकार के रूप में मिलते हैं। इनमें नये गुण मात्र वह प्रगट करता है। भाषा को वह एक बार फिर से शुरू से नहीं गढ़ता पुराने छन्दों में वह जोड़–तोड़ करता है उनमें नया संगीत भरता है। रेखाओं से वह नये चित्र सजाता है रंगों के सर्वथा अपूर्व मे लव ही दिखाता है।

भारतीय दृष्टिकोण चित्र को मस्तिष्क के दर्शन तत्व की उपज स्वीकार करता है। यहाँ दर्शन से हमारा तात्पर्य वस्तु के बाह्य रूपाकारको धर्म चक्षुओं द्वारा देखने मात्र से नहीं है। अपितु दर्शन की यह क्रिया चित्र के प्रत्यक्ष प्रभाव से आरम्भ होती है। उसके परोक्ष में निहित तात्विक भाव में नहीं। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से मानव मन पर पड़ने वाले किसी वस्तु स्थल अथवा घटना के प्रभाव के परिणाम स्वरूप चित्रण की क्रिया को जन्म मिलता है। इसी प्रत्यक्ष प्रभाव को हमने मानव मस्तिष्क की दर्शन क्रिया की संज्ञा प्रदान की है। सृजन क्रिया चित्र के मूल में विद्यमान न होकर दर्शन क्रिया के परोक्ष में निहित प्रभाव का परिणाम है। यदि किसी देव प्रार्थना में किसी स्रोत का सन्दर्भ किसी अन्य शक्ति के माध्यम द्वारा हो तो उसे परोक्ष और यदि सीधे रूप में हो तो प्रत्यक्ष कहा जायेगा। जनसामान्य के सन्दर्भ में मानवको "प्रत्यक्षम" प्रिय माना गया है। प्रत्यक्ष का प्रभाव मानव मन को गति प्रदान करता है जिससे उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को तृप्ति मिलती है। परोक्ष का प्रभाव तीव्र और अधिक गम्भीर हो सकता है, किन्तु इसका उपभोग आध्यात्म दर्शन में तो उपादेय है, सौन्दर्य के रसास्वादन नहीं। इसी कारण चित्रों के सन्दर्भ में प्रत्यक्ष प्रभाव का महत्व भारतीय चित्र कला दर्शन में सर्व स्वीकृत है।

सौन्दर्य द्वारा परमानन्द की प्राप्ति सामान्य रसानन्द से भिन्न है। आत्म शान्ति की प्राप्ति जो, निश्चित रूप से एक आन्तरिक गुण है तथा जिसके प्राप्त कर लेने पर मानव की बाह्य स्वरूप में इतनी रूचि नहीं रहती, सामान्यतः एक स्थायी एवं गरिमामयी तत्व है। सौन्दर्य के विषय में आदर्श का स्तर निश्चित करने में इस आत्मानन्द आन्तरिक ज्ञान का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। आदर्श रूप में प्राप्त यह आत्मानन्द कभी न्यूनाधिक नहीं होता, तथा स्थायी वस्तु बनता है। मनोरंजक क्षणिक होता है और न्यूनाधिाक रूप से घटता बढ़ता रहता है। रस की उपस्थिति तो दोनों ही स्थितियों में होती है किन्तु परमानन्द की प्राप्ति के लिये सात्विक सौन्दर्य से परिपूर्ण वस्तु के अन्तर में रस का अस्तित्व होना अनिवार्य है।

प्रत्यक्ष रूप–विधान के पश्चात् कला और काव्य का सृजन करने में कल्पना तत्पर रहती है, किन्तु वह कल्पना मानव हृदय पर पड़े प्रत्यक्ष रूप विधान के अन्तर्गत आने वाले तत्वों की पृष्ठभूमि पर ही अंकुरित होती है। इस कारण कल्पित रूप–विधान से पहले इसकी पृष्ठभूमि का अस्तित्व आता है। प्रत्यक्ष रूप विधान के अन्तर्गत जो प्रभाव मानव हृदय पर पड़ता है, वह सामान्यतः अपने अपने कुछ चिन्ह हृदय पर अंकित कर जाता है। ये चिन्ह इस प्रभाव अवशेषों के रूप में स्मृति पटल पर अंकित हो जाते हैं। कल्पित रूप विधान के आधार स्मृति पटल पर अंकित यही अवशेष होते हैं। सृजन की पूर्ण प्रक्रिया, प्रत्यक्ष स्मृति और कल्पना तीनों के ही समन्वयात्मक स्वरूप से आरम्भ होती है। कलाकार जो चित्रण करता है उसकी रूपरेखा प्रायः उसके समक्ष न होकर उसकी कल्पना में होती है। यदि एक क्षण को यह भी मान लिया जाये कि कलाकार किसी दृश्य के सम्मुख बैठ कर उसका चित्रण करता है, इस कारण स्मृति अथवा कल्पना की आवश्यकता इस क्षण नहीं पड़ती, तो भी हम कहेंगे कि यह विचार पूर्णतः भ्रामक है। कलाकार के लिये यह तो संभव नहीं है कि वह अपनी दृष्टि एकटक दृश्य पर लगाये रहे और उसका चित्रण केवल उसकी तूलिका द्वारा चलता रहे। दृश्य को वह एक क्षण के लिए देखता है, उसे हृदय पटल पर अंकित करता है फिर उधर से दृष्टि मोड़कर चित्रण की ओर लगाता है।

कला और काव्य का समस्त रूप–विधान इसी कल्पना की क्रिया पर आधारित है। आकांक्षा की पूर्ति के लिये जो सुख और आनन्द को प्राप्त करने का साधक है, सबसे प्रथम जिस रूप अथवा आकार का अस्तित्व अथवा जिस स्थिति का आभास होता है वह कल्पना ही है। सौन्दर्यात्मक सृजन में तो कल्पना ही प्रमुख रूप से कार्य करती है। जिन महान चित्रों, काव्यों, रचनाओं, अमरगाथाओं, महान भवनों और प्रासादों को आज हम देखते हैं तथा जिन्हें देखकर आकर्षित होते हैं, इन समस्त निर्माणों की प्राथमिक पृष्ठभूमि यह कल्पना ही रही है।

कला के तत्वों की खोज में धैर्य पूर्वक की हुई गवेशणा, पारस्परिक विचारों की सदम्बद्धता तथा विशुद्ध बौद्धिक विचारों की आवश्यकता है अपने निरीक्षण और प्रयोगों में यह चेतनात्मक तत्वों के निकटतम सम्पर्क में आती है। चेतनात्मक तत्वों में रंग, किसी वस्तु तथा पुष्प–पत्र का आकार एवं प्रभाव आदि आते हैं किन्तु इसका परम उद्देश्य एक तार्किक एवं व्यवस्थित विधि को खोज निकालना है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण वस्तुओं और पदार्थों के विषय में सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया जा सके। वैज्ञानिक सिद्धान्तों के व्यापक प्रयोग में कलाकार को क्रियाशील कल्पना तथा आन्तरिक प्रभाव का अध्ययन करने की क्षमता प्राप्त होती है।

धर्म और जीवन का भारतीय दृष्टिकोण सामान्य जन–जीवन की नित्य प्रति की क्रियाशीलताओं और क्रियाकलापों पर आधारित है। उस असीमति शक्ति के विषय में भारतीय आधुनिक दृष्टिकोण इसी ज्ञान पर आधारित है, जिसके सम्पर्क में हम जीवन में नित्य प्रति आते हैं तथा कला में इस जगत को इस देवी शक्ति का स्वरूप स्वीकार करते हैं। यह तथ्य यथार्थ कला की समीक्षा करने में सहायक सिद्ध हो सकता है, जिसके अन्तर्गत प्रकृति के विभिन्न रूपों को विविध आकारों में यथावत चित्रित किया जाता है। देवी शक्ति को मानव और प्रकृति दोनों में ही विद्यमान स्वीकार किया जाता है। यद्यपि यह शक्ति बाह्य रूप से अदृश्य है, किन्तु आन्तरिक रूप से प्रकृति और जीवन इसका अस्तित्व ठीक उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार दो, तीन, चार, पाँच आदि की प्रत्येक संख्या में एक संख्या विद्यमान है।

नैतिकता और धर्म का भावात्मक जगत, कला के क्षेत्र में रूप प्राप्त करता है। कला रूप, स्वरूप और आकार के संसार में विचारण करती है। इस संसार में आकार, रंग, कल्पना, लय और गति का राज्य रहता है। यह अपने क्षेत्र में उन समस्त वस्तुओं को खिंचलाती है, जिनका उपयोग यह अपेक्षित समझती है और इसी स्थल पर धर्म एवं नैतिकता की भावना के साथ इसका संघर्ष उत्पन्न होता है। कोई भी नैतिकता में विश्वास रखने वाला व्यक्ति यह सहन नहीं कर सकता कि नैतिकता केवल दिखाने की वस्तु रह जाये और उसका उपयोग जीवन की वास्तविक नैतिक समस्याओं के सुलझाने में न हो कोई भी धर्माचार्य इससे संतुष्ट नहीं हो सकता कि ईश्वरीय विश्वास, विश्व के सृष्टा के रूप में चरित्र के निर्माण में गम्भीर प्रभाव न डाले तथा जीवन को नैतिक मार्ग पर चलाने में सहायक न हो। जीवन के क्षेत्र में नैतिक और धार्मिक विश्वासों की छाया में व्यक्ति से व्यक्ति के लिये उपयुक्त मार्ग चयन के सिद्धान्त प्रत्येक स्थल पर भिन्न होते हैं।

आध्यात्मवादियों के विचार से कला ईश्वर अथवा सौन्दर्य के किसी रहस्यपूर्ण भाव की अभिव्यक्ति नहीं है। इसी प्रकार तत्व वेत्ताओं के मतानुसार इसे स्वयं में समाविष्ट ओज के बाहुल्य का उपयोग करने वाली क्रीडा भी नहीं कह सकते। उसे आनन्द का स्वरूप कहना भी इस स्थल पर उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। वास्तव में उसका कार्य प्रत्येक व्यक्ति को एक ही भाव में बांधकर व्यक्ति और समाज के बीच सामन्जस्य स्थापित कर उन समस्त कार्यों को प्रतिपादित कराना है, जिनमें व्यक्ति एवं समाज का हित निहित हो।

मानव के सौन्दर्यात्मक, नैतिक एवं धार्मिक विश्वासों की वास्तविकता से सम्बन्धित उसके मूल्यांकन के प्रति वैज्ञानिक की बाह्य अभिरूचि व्यक्ति के गुणों से पूर्ण रूप से असम्बन्धित नहीं होती, क्यों कि हमारे अनुभव में व्यक्तित्व और मूल कार्य विधि परस्पर सम्बन्धित होते हैं। मूल्यांकन कार्य विधि स्वयं अपनी कार्यशीलता में सामान्य रूप से व्यक्ति के विशेष गुणों पर केन्द्री भूत रहती है। हम साधारण रूप से विषमताओं का मूल्यांकन नहीं करते वरन् विविध वस्तुओं, घटनाओं एवं क्रिया कलापों का मूल्यांकन करते हैं, वे विशुद्ध भाव रूप में सौन्दर्य न होकर विशिष्ट पदार्थ, दृश्य अथवा वस्तु चित्र आदि होते हैं जो प्रकृति एवं कला की विशिष्ट कला कृतियों में दृष्टिगत होते हैं।

कला और धर्म में से कौन पहले आया स्वतः इसका निर्णय न हो सके। संभवहः ये दानों 'आदिम अवस्था में कुछ अन्तर से प्रकट हुये, कला सौन्दर्य, रूप–सम्पदा को लेकर उन्मुक्त विनोद में इठलाती हुई और धर्म मर्यादा और विधि–निषेध का मापदण्ड हाथ में लिये अकड़ता हुआ। स्वतः अपने शिशु काल में ही धर्म ने कला को वरण किया। क्योंकि आदिकाल से आज तक असंख्य मंदिर, स्तूप, मस्जिद, गिरजों के रूप में चित्रकारी, संगीत, नृत्य और साहित्य के रूप में इन दोनों के परिणय से ये सृष्टियाँ होती रही हैं। धर्मकला के आकर्षण गुणों के बिना स्वतः नीरस और निर्जीव होकर अब तक मिट गया होता। धर्म ने कला को गौरव प्रदान किया और कला ने धर्म को अपना सौन्दर्य और अभिव्यक्ति के लिये साधन। इसका तात्पर्य यह नहीं कि कला ने धर्म की मर्यादा और दमन–दण्ड को सहृदय स्वीकार किया हो। कला ने आज भी स्त्री–आन्दोलन से पूर्व अपनी स्वतंत्रता की रक्षा की और धार्मिक क्षेत्र से बाहर भी केवल स्वच्छन्द हास–विलास, मनो विनोद, निर्बन्ध, रस–क्रीड़ा और उन्मुक्त आत्माभिव्यक्ति के क्षेत्रों में अपने सौन्दर्य से जन–जन को आप्लवित किया है। यह राज प्रसादों में रही

है और इसने राज–शक्ति का उपयोग किया है। धनिकों का वह वैभव इसे पसन्द है जो संगीत, स्थापत्य, चित्र आदि के रूप में अभिव्यक्ति के लिये साधन और अवसर प्रदान करता है। परन्तु इसे प्रतिभावान दरिद्र भी अप्रिय नहीं है। लोक–गीतों और लोक नृत्यों में, प्रत्येकजन पर्व पर पढ़े और बेपढ़े, मूर्ख और विद्वान, धनी और निर्धन, सभी के लिये कला अपना विलक्षण सौन्दर्य प्रस्तुत करती है। युगों के इतिहास में कला का यह जन–मन–रंजन कार्य महत्व रखता है।

धर्म ने जब अपने क्षेत्र और मर्यादा को लांघना शुरू किया, तो विज्ञान ने उसे टोका और रोका। इतना ही नहीं, विश्व और जीवन को समझने के लिये विज्ञान ने एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, विध्ाान बनाये, धर्म की मान्यताओं में संदेह उत्पन्न कर दिया, उसके क्षेत्र को व्यक्ति तक सीमित किया और अन्त में गवेश्णा और प्रमाण के नूतन और प्रबल बौद्धिक मार्गों और यंत्रों का आविष्कार किया। विज्ञान सत्य की खोज में निकला धर्म ने विश्व के जिस मंगलमय रूप को प्रस्तुत किया था, विज्ञान ने उसे अप्रमाणित, विश्वास के अयोग्य, परलौलिक सिद्ध किया। इतना ही नहीं, विज्ञान ने नीति को भी अनावश्यक नियमों का जाल घोषित किया। मैं यहाँ विज्ञान के इन प्रत्यनों की सफलता या प्रामाणिकता पर विचार नहीं करूँगा। परन्तु विज्ञान का उदय, वह भी धर्म के अनन्तर एक ऐतिहासिक घटना है। इसने मंगल में सामजस्य उत्पन्न किया। सत्य ही मंगल है यह विज्ञान का सिंह नाद है।

भारतीय चित्रण–परम्परा का इतिहास बहुत प्राचीन है। भारतीय चित्रण परम्परा के मूल स्रोत हमें ऋग्वेद में मिलते हैं। काव्यकला, वास्तुकला एवं चित्रकला के उदाहरण प्रसंग वेदों में विराट रूप में मिलते हैं। भारतीय कलाओं का सम्बन्ध लोक जीवन से अधिक निकट है। भारतीय कला का स्वरूप भारतीय संस्कृति के अनुरूप आध्यात्मिक एवं धार्मिक है जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक उद्वेगों से प्रभावित है। सारी ललित कलाओं में चित्रकला का स्वरूप इतना विस्तृत है कि उसके लक्षण बड़ी ही सरलता से समझे जा सकते हैं। भारतीय चित्रकला का स्वरूप पूर्ण रूप से कलात्मक है। भारतीय चित्रण शैली अभिव्यक्ति की दृष्टि से अद्वितीय है। उसे काव्य चेतना का गतिमय चित्रण कहना ही उचित है।

चित्रकारों ने रूप भेद को रेखाओं के द्वारा दर्शाने का सफल प्रयोग किया है। चित्रकारों ने सजीव भावों को आकार, रेखा, रंग और अलंकरण से इस रूप में वर्णित अनुकूल माध्यमों द्वारा अपनी अनुभूमि को अभिप्रेषित कर कलाकृति का सृजनकर्ता कलाकार कहलाता है। कला सृजन के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका का सम्पदानकर्ता कलाकार ही है। कलाकार का व्यक्तित्व, जीवन के घटनाक्रम का सूक्ष्म दशर्न होता है और इसी घटनाक्रम में वह कला बिम्बों का सजीव तत्व प्राप्त करता है, वह तत्वान्वेशी है और कला सृजन, उसका एकमात्र उद्देश्य है। अभिव्यक्ति को कलाकार निश्चित आयाम देता है, अपने तत्वान्वेशीचित्त द्वारा उसके स्वरूप को मुखरित करता है। इस प्रकार कलाकार की सौन्दर्यमयी सर्जना का नाम ही कला है।

मानव अपने विचार और भावों को दूसरों पर प्रकट करने के और दूसरे के विचारों को सुनने और समझने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहा है और इस इच्छा को साकार करने की कोशिश करता है। उसकी इस चेष्टा ने ही चित्रांकन को जन्म दिया है। प्रारम्भ में चित्रांकन एक स्वतः संचालित प्रक्रिया ही रही, लेकिन समय और सामाजिक प्रगति के साथ चित्रांकन का एक निश्चित विधान बनता

चला गया और धीरे–धीरे उसकी एक पम्परा विकसित हो गयी तथा उसके चित्रण में आवश्यक सिद्धान्त भी स्थपित होते चले गये।

भारतीय चित्रकला का परम्परावादी स्वरूप अजन्ता, राजस्थानी और पहाड़ी चित्रण शैलियों में स्पष्टतः दिखलाई पड़ता है और इन शैलियों में चित्रण भारतीय चित्रकला के निश्चित सिद्धान्तों और प्रक्रिया में किया गया है। चित्रण–विधान और उसकी प्रक्रिया का क्रम पहाड़ी चित्रकला के पश्चात् धीरे–धीरे समाप्त होता दिखलाई पड़ता है।

'भाव' भारतीय चित्रकला का प्राण है। चित्र में उसकी अभिव्यक्ति को अति महत्वपूर्ण और अनिवार्य बताया है। चित्र के माध्यम से प्राणी अपने विचारों और भावों को अभिव्यक्त करता रहा है जिसके लिये भाव पक्ष का महत्व बढ़ गया है क्योंकि भाव के अभिव्यक्तिकरण की प्रक्रिया भारतीय चित्रकला में सैद्धान्तिक है। उसके तत्व और कारक निश्चित हैं और उनका उल्लेख भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध है। उनके उचित एवं सही प्रयोग से ही चित्रण सृजना और अभिव्यक्तिकरण की प्रक्रिया को मुखरित होना, संभव होता है।

उपरोक्त विषय की सार्थकता को महत्व देते हुये मैंने अपने शोध पत्र का विषय भारतीय चित्रकला का धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप रखा है। इसकी उद्देश्य पूर्ति के लिये प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध प्रकरणों को खोजना, उनमें वर्णित सिद्धान्तों का अध्ययन करना तथा उनकी पुष्टि में भारतीय चित्रकला का मूल्यांकन और विवेचन करना निश्चित किया गया।

संदर्भ

1. सक्सेना, रणवीर. कला सौन्दर्य और जीवन. रेखा प्रकाशनः देहरादून।
2. सक्सेना, एस०बी०एल०., सरना, सुधा. भारतीय चित्रकला, परम्परा और सिद्धान्त. प्रकाश बुक डिपोः बरेली।
3. गैरोला, वाचस्पति. भारतीय चित्रकला. मित्र प्रकाशनः इलाहाबाद।
4. वर्मा, अविनाश बहादुर. भारतीय चित्रकला का इतिहास. प्रकाश बुक डिपोः बरेली।
5. Bhattacharya, T.P. Cannons of Indian Art. Calcutta.
6. Shivaramamurti, C. Indian Painting. New Delhi.
7. Sudhi, Padma. Aesthetic Theories of India. Intellectual Publishing House: New Delhi.
8. Veershwar, Prakash., Sharma, Nupur. Krishna Prakashan: Meerut.
9. Sharma, L.C. Brief History of Indian Painting. Krishna Prakashan: Meerut.
10. Shastri, Ashok Chatterjee. Vishnu dharmottarapuranam. Varanaseya Sanskrit Vishvavidhyalaya: Varanasi.
11. Agarwal, V.S. Indian Art. Varanasi: Prithvi Prakashan.
12. Saxena, S.B.L. Art Theory and Tradition. Prakash Book Dept.: Bareilly.
13. Agarwal, R.A. Kaka Vilas Bhartiya Chitrakala ka Viveechan. International Publishing House: Meerut.